

# माँ का ऋण कैसा ?

- पूज्य बापूजी

स्वामी विवेकानंद को किसी युवक ने कहा :  
“महाराज ! कहते हैं कि माँ का ऋण चुकाना कठिन होता है । ऐसा तो क्या है माँ का ऋण ?”

विवेकानंदजी : “इस प्रश्न का उत्तर प्रायोगिक चाहते हो ?”

“हाँ महाराज !”

“थोड़ी हिम्मत करो, यह जो पत्थर पड़ा है, इसको अपने पेट पर बाँध लो और ऑफिस में काम करने जाओ । शाम को मिलना ।”

पेट पर ढाई-तीन किलो का पत्थर बँधा हो और कामकाज करे तो क्या हालत होगी ? आजमाना हो तो आजमा के देख लेना । नहीं तो मान लो, क्या हालत होती है !

वह थका-माँदा शाम को लौटा । विवेकानंदजी के पास जाकर बोला : “माँ का ऋण कैसा ? इसका जवाब पाने में तो बहुत मुसीबत उठानी पड़ी । अब बताने की कृपा करें कि माँ का ऋण कैसा होता है ?”

“यह पत्थर तूने कब से बाँधा है ?”

“आज सुबह से ।”

“एक ही दिन हुआ, ज्यादा तो नहीं हुआ न ?”

“नहीं ।”

“तू एक दिन में ही तौबा पुकार गया । जो महीनों-महीनों तेरा बोझ लेकर घूमती थी, उसने कितना सहा होगा ! उसने तो कभी ना नहीं कहा । अब इससे ज्यादा प्रायोगिक क्या बताऊँ तुझे ?”

# उत्तम समझ

बचपन में गाँधीजी को लोग मोनिया कहकर पुकारते थे । प्यार से मोहन की जगह यह नाम लेते थे । मोनिया का शरीर दुबला था । उसे पेड़ों पर चढ़ना अच्छा लगता था । मंदिर के आँगन में अमरुद और पपीते के पेड़ थे । मोनिया उन पर चढ़कर पके फल तोड़ लाता । गिरने के डर से पिता उसे पेड़ पर चढ़ने से मना करते लेकिन उसका मन न मानता ।

एक दिन मौका देखकर वह अमरुद के पेड़ पर चढ़ गया । संयोग से उसके बड़े भाई वहाँ आ गये । उन्होंने उसको पैर पकड़कर नीचे खींच लिया और कुछ चपतें रसीद कर दीं । मोनिया रोता हुआ अपनी माँ पुतलीबाई के पास पहुँचा और बोला : “माँ ! भाई ने मुझे मारा है ।” माँ ने सहज भाव से कह दिया : “उसने तुझे मारा है तो तू भी उसे मार ।”

माँ का यह कहना ही था कि मोनिया का रोना रुक गया और वह गंभीर होकर बोला : “ऐसा तुम कहती हो माँ ! मैं मारूँ, बड़े भाई पर हाथ उठाऊँ ?” माँ ने हँसकर कहा : “इसमें क्या बात है । बच्चों में आपस में लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट होती ही रहती है ।” मोनिया ने क्षणभर माँ की ओर देखा, फिर बोला : “तुम कैसी माँ हो ! बड़े को मारने की सीख देती हो ? भाई मुझसे बड़े हैं, वे मुझे भले ही मार लें पर मैं उन्हें नहीं मार सकता ।” माँ यह सुनकर चकित हो गयीं । उन्होंने मारने की बात तो यों ही कह दी थी । वे कुछ कहें इससे पहले मोनिया आगे बोला : “माँ ! जो मारता है उसे तुम क्यों नहीं रोकती ? उससे तुम्हें कहना चाहिए कि वह न मारे, न कि मार खानेवाले से कहो कि वह भी मारे ।”

माँ का दिल भर आया । बेटे की निर्मल बुद्धि

पर उनकी छाती गर्व से फूल उठी । उसे सीने से लगाकर वे इतना ही कह सकीं : “बेटे ! तुझे ऐसी बातें किसने सिखायी ? पता नहीं विधाता ने तेरे लिए क्या लिख रखा है ?”

जो सत्यनिष्ठ होते हैं, सच्चे हृदय से भगवान का नाम लेते हैं, भगवान से सच्ची प्रार्थना करते हैं और भगवान के शरणागत होते हैं, भगवान उनकी मति-गति उन्नत कर देते हैं तथा उनके द्वारा लोक-मांगल्य के कार्य करा लेते हैं । प्रीतिपूर्वक भगवान की स्मृति और उनमें शांत होना यह उनकी शरण होने का अद्भुत फल है । सच्चा भगवत्शरणार्थी बुद्धिमान एवं परोपकारी होता ही है ।

## पिता की प्रसन्नता के लिए

भारत में कैसे-कैसे योद्धा हो गये ! पिता की इच्छापूर्ति के लिए राज्य करने से तो इनकार कर ही दिया, साथ ही आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का भी पालन किया था पितामह भीष्म ने । राज्य करने में वे समर्थ थे, किन्तु पिता की प्रसन्नता के लिए राज्य तक ठुकरा दिया !

सर्वतीर्थमयी माता, सर्वदेवमय पिता और ब्रह्ममय गुरु- इन तीनों की प्रसन्नता से इहलोक, देवलोक और ब्रह्मलोक तक की सफलता पाना सहज हो जाता है । जो माता-पिता की अवज्ञा करता है, अपमान या अवहेलना करता है वह अपना इहलोक और परलोक बिगाड़ता है । ब्रह्मवेत्ता गुरु से सम्पर्क करने में या ईश्वर की प्राप्ति में माता-पिता या कोई स्नेही रोकता है तो उनकी अवहेलना करना कोई अपराध नहीं, अन्यथा अवहेलनावाला अपने को विनाश के रास्ते ले जाता है ।

जाके प्रिय न राम-बैदेही ।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥  
(विनय पत्रिका)

यह तुलसीदासजी ने मीराबाई की प्रार्थना के उत्तर में लिखा था ।

क्या आपके माता-पिता ईश्वर के रास्ते रोकनेवाले, अवहेलना के योग्य हैं ? या आप अवहेलना करके कुदरती कोप के भाजन बनने जा रहे हो ? माता-पिता और गुरु की अवहेलना करनेवाले वासना-प्रेरित पुतलों का पतन हमने देखा है । अगर भविष्य उज्ज्वल चाहते हो तो आपका कर्म धर्म-प्रेरित होना चाहिए, वासना-प्रेरित नहीं ।

भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं कि ‘जो पुत्र माता-पिता को संतुष्ट करता है, उनकी आज्ञा का पालन करता है उसे फिर किसी तीर्थ में जाने की आवश्यकता नहीं रहती । इहलोक एवं परलोक की सफलताएँ उसकी मुट्ठी में आ जाती हैं । जो अपने गुरु को संतुष्ट करता है वह ब्रह्मलोक तक की सफलता प्राप्त कर लेता है । वह सभी ऋषि-मुनियों को प्रसन्न कर लेता है । जो ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु को सम्मानित करता है, प्रसन्न करता है वह त्रिभुवन में सभीको प्रसन्न करनेवाला पद पा लेता है ।’

बड़ी ऊँची समझ के धनी थे भीष्म पितामह !

जो माता-पिता का आदर-सत्कार करता है वह स्वयं आदरणीय हो जाता है और अवहेलना करनेवाला आदरणीय दिखे फिर भी उसका आदर टिकता नहीं । जिन माता-पिता ने बाल्यकाल में हमें पाला-पोसा उनकी वृद्धावस्था में उनका पालन-पोषण करना हमारा कर्तव्य है । जो पुत्र माता-पिता का पालन-पोषण नहीं करता, उसका इहलोक और परलोक, सब उसे विफलता की खाई में गिरानेवाला हो जाता है ।

अपने को नियम से गिरानेवाले परम हितैषी

की बात भी ठुकरा देनी चाहिए। प्रह्लाद ने पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर दिया, मीरा ने पति की बात को ठुकरा दिया, तुकारामजी ने पत्नी की बात को ठुकरा दिया। मैं (संत श्री आसारामजी बापू) तो यह बात भी हृदयपूर्वक कहूँगा कि ईश्वर-प्राप्ति में अगर गुरु भी बाधक बनते हों तो उनकी बात की भी अवहेलना की जा सकती है। बलि राजा ने गुरु की बात को ठुकरा दिया था। ईश्वर-प्राप्ति ही सर्वोपरि है।

महाराज युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से प्रश्न किया : “हमारे जैसे राजकाज में फँसे हुए लोग कर्मबंधन से कैसे छूटें ?”

भीष्मजी ने कहा : “युधिष्ठिर ! जीव को भूलकर भी अपना कर्मबंधन नहीं बढ़ाना चाहिए। कर्म करने की शक्ति तो सभीमें है किन्तु अज्ञानी जीव उससे कर्मबंधन बढ़ाने की मूर्खता करते हैं। कर्म ऐसे करने चाहिए कि कर्मों से कर्म कट जायें।

जो मन को वश में करता है, दंभ नहीं करता, विषयों की ओर बढ़ती हुई इच्छाओं को रोकता है, कटुवचन सुनकर भी उत्तर नहीं देता वह मुक्ति एवं शांति का अधिकारी हो जाता है। जो मार खाने पर भी शांत और सम रह लेता है, वह तपस्वी मुक्ति का अधिकारी है। जो अतिथि एवं लाचार को आश्रय देता है, दूसरों की निन्दा न करता है न सुनता है उसका स्मरण करने से औरों को भी सत्प्रेरणा मिलती है। जो नियमपूर्वक शास्त्र पढ़ता है, धर्म के रहस्य को सुनता व जानता है, दिन में नहीं सोता, उसका पुण्य बढ़ता है एवं आरोग्य की रक्षा होती है। जो गुरुदत्त मार्ग से आत्मविश्रान्ति पाता है उसे सामर्थ्य प्राप्त होता है।

जो स्वयं आदर नहीं चाहता वरन् दूसरों को आदर देता है, वह मोक्ष का अधिकारी, राजकाज करते हुए भी सत्स्वरूप ईश्वर को पाने के रास्ते

चलने में सफल होता है।

जो क्रोध के वशीभूत नहीं होता, वह दूसरों को भी शांत करने में सक्षम हो जाता है। जो स्वाद के लिए नहीं अपितु स्वास्थ्य के लिए भोजन करता है, वह राजकाज करते हुए भी मुक्ति-मार्ग का पूर्ण अधिकारी हो जाता है।

युधिष्ठिर ! धर्म का मार्ग बहुत पवित्र है।”

किस समय क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए- इस बात को भी समझ लेना चाहिए। आपके सत्य से किसीका अहित होता हो, किसीकी हत्या होती हो तो उस समय चुप रहना आपके लिए धर्म है। कभी ‘नरो वा कुंजरो वा’ कहने से भी धर्म की रक्षा होती हो और अधर्म नियंत्रित होता हो तो वह आपके लिए उचित है। जैसे, श्रीकृष्ण ने करवाया था।

जो अपने अकर्ता, अभोक्ता आत्मा को जानकर सुखी हो जाता है, वह किसीसे न राग करता है न द्वेष। श्रीकृष्ण की दृष्टि में न कोई अच्छा है न बुरा, न कोई अपना है न पराया। फिर भी वे सबसे यथायोग्य व्यवहार करते हुए दिखते हैं।

श्रीकृष्ण युद्ध जैसे घोर कर्म के सूत्रधार हैं। वे भक्त के वचन की रक्षा के लिए अपने वचन से कभी मुकर भी जाते हैं। किन्तु ये सारी चेष्टाएँ भी वे ऐसी ऊँचाइयों को छूते हुए करते हैं जहाँ कर्तृत्व और भोक्तृत्व की गंध ही नहीं है। जहाँ सुख और दुःख की सत्यता नहीं है। जहाँ उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का प्रवेश नहीं है।

## माँ की सीख

विश्व के सभी देशों से अधिक मानवीय संवेदना, परहित की भावना, भगवत्श्रद्धा, दूसरों के दुःख में सहायरूप होने के संस्कार भारत में पाये जाते हैं। पाश्चात्य संस्कृति के लगातार आक्रमण के बावजूद भी सनातन संस्कृति के इन दिव्य संस्कारों का उच्छेदन नहीं हुआ, बल्कि भारतवासियों के हृदयों में, रगों में ये अभी भी समाये हुए हैं। हमारे देश में आज भी कई घरों में माताएँ प्रातःकाल बच्चों को सिखाती हैं : 'बेटा ! स्नान करके भगवान को प्रणाम करो। गौमाता को प्रणाम करो।' 'शाम हो गयी है, हाथ-पैर धोकर दीपज्योति जलाओ और प्रार्थना करो।' 'विपत्ति आये तो भगवान को पुकारो, उनके नाम का जप करो।' आदि-आदि। इस प्रकार से हमारी संस्कार-धरोहर पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती आयी है। आज के युग में जब हमारी संस्कृति की संस्कार-सरिता पर कुछ काई-सी छायी नजर आ रही है, ऐसे में महान माता-पिताओं तथा गुरुजनों की शिक्षाएँ अन्यो के लिए आदर्शस्वरूप सिद्ध होंगी। इसलिए ऐसे प्रसंगों की एक हृदयस्पर्शी लेखमाला शुरू की जा रही है। यह लेखमाला 'बाल संस्कार केन्द्रों' के संचालकों के लिए भी बच्चों में संस्कार-सिंचन हेतु लाभदायक सिद्ध होगी। सच्चे गहने

१९वीं शताब्दी का यह प्रसंग है। बंगाल के मेदिनापुर जिले के वीरसिंह गाँव के एक बालक ने अपनी माँ से कहा : "माँ ! मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हारे लिए कुछ गहने बनवाऊँ।"

माँ बोली : "हाँ बेटा ! बहुत दिनों से मुझे तीन गहनों की चाह है।"

उत्सुकतापूर्वक बालक ने पूछा : "माँ ! कौन-से तीन गहने ?"

"बेटा ! इस गाँव में कोई विद्यालय नहीं है, इसलिए मेरी पहली चाह यह है कि यहाँ एक अच्छा विद्यालय हो। दूसरा, गाँववालों की चिकित्सा का कोई प्रबंध नहीं है, मैं चाहती हूँ यहाँ एक दवाखाना खुले। तीसरा, गरीब और अनाथ बच्चों में भोजन व खाद्य-सामग्री बाँटी जाय। बस, यही वे तीन गहने हैं जिनकी मुझे चाह है।"

माँ की बातें सुनकर बालक की आँखें प्रेमाश्रुओं से छलछला उठीं, हृदय परोपकार की भावना से भर गया और सिर माँ के चरणों में झुक गया। उसने माँ के कहे अनुसार तीनों गहने बनवा दिये। वीरसिंह गाँव का 'भगवती विद्यालय' आज भी इसका साक्षी है। वह माँ थी भगवती देवी और बालक था ईश्वरचन्द्र, जो आगे चलकर पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के नाम से विख्यात हुआ। माँ के इन्हीं संस्कारों ने बालक ईश्वरचन्द्र में मानवीय संवेदनाओं का विकास किया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागरजी ने अपने जीवन में शिक्षा (विशेषकर स्त्री-शिक्षा) के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किये, साथ ही चिकित्सा-सेवा, दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सेवा एवं नशामुक्ति हेतु भी कार्य किये। उन्होंने बंगाल में कई विद्यालय खोले। किसानों व मजदूरों के लिए रात्रि-पाठशालाएँ खोलीं। सन् १८७६ के बंगाल के भीषण अकाल में भूख से तड़पते लोगों की दुर्दशा देखकर उनका हृदय व्यथित हो उठा। उन्होंने सरकार के समक्ष अकालपीड़ितों की दयनीय अवस्था का मार्मिक वर्णन कर सरकार द्वारा अन्नक्षेत्र खुलवाये, साथ ही स्वयं भी कई अन्नक्षेत्र खोले। किसीके बीमार होने की खबर मिलने पर वे स्वयं उसके पास जाते व दवा देकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करते। मानवेतर प्राणियों का वे कितना ख्याल रखते थे - इस बात को उजागर करनेवाला उनके जीवन का एक प्रसंग है। एक बार विद्यासागरजी से खुदीराम बोस मिलने

आये । विद्यासागरजी ने खाने के लिए उन्हें नारंगियाँ दीं । वे नारंगियों को छीलकर उनकी फाँकें चूस-चूसकर फेंकने लगे । यह देखकर विद्यासागरजी बोले : “भाई ! इन्हें फेंकिये मत । ये भी किसीके काम आ जायेंगी ।”

खुदीरामजी ने बड़े ही आश्चर्य के साथ विद्यासागरजी की ओर देखते हुए कहा : “आप इन्हें किसे देनेवाले हैं ?” विद्यासागरजी ने हँसकर उत्तर दिया : “आप इन्हें खिड़की के बाहर रख दीजिये और वहाँ से हट जाइये तो अभी पता चल जायेगा ।” चूसी हुई उन फाँकों को खिड़की के बाहर रखने पर कुछ कौवे उन्हें लेने के लिए आ गये । विद्यासागरजी ने कहा : “देखो भाई ! जब तक कोई पदार्थ किसी भी प्राणी के काम में आने के योग्य हो, तब तक उसे व्यर्थ नहीं फेंकना चाहिए । उसे इस प्रकार रखना चाहिए कि धूल-मिट्टी लगकर वह नष्ट न हो जाय और दूसरे प्राणी उसका उपयोग कर सकें ।”

उनकी परोपकारिता के बारे में सुनकर एक बार श्री रामकृष्ण परमहंस उनसे मिलने आये । परमहंसजी ने कुशलक्षेम जानने के बाद कहा : “मैं अनेक दलदलों को पार करता हुआ अंत में अथाह सागर के किनारे आ पहुँचा हूँ और वह अब मेरे सामने है । आप ही वह विशाल महासागर हैं और मैं आपके भीतर से कुछ अमूल्य मोती चुनने आया हूँ । आशा है, मुझे खाली हाथों नहीं लौटना पड़ेगा ।”

विद्यासागरजी ने परमहंसजी की बात सुनकर मुस्कराते हुए उत्तर दिया : “आपने यहाँ पधारकर सचमुच मुझे कृतार्थ किया है लेकिन जिस सागर की खोज आप कर रहे हैं और जिसके पास आप आये हैं, वह सच्चा सागर नहीं है । मुझे विश्वास है कि इसमें आपको कोई मोती नहीं मिलेगा । हाँ, मुट्ठीभर कौड़ियाँ अवश्य मिल सकती

हैं । आपको उनसे ही संतोष करके लौटना होगा ।”

वास्तव में सद्गुणों के सागर होते हुए भी कितनी निरभिमानीता थी विद्यासागरजी में ! परोपकार की चाह ही जिस माँ के गहने थे और निरभिमानता से अलंकृत निःस्वार्थ सेवा ही जिस पुत्र के जीवन का उद्देश्य था, वे सत्संगी माँ भगवती देवी व विद्यासागरजी धन्य हैं ! ‘सबमें एक, एक में सब’ के सत्संग को पचानेवाली वह माता धन्य है !

## दही जमानेवाले भी भगवान !

संत विनोबा भावे के बचपन की बात है । उनकी माँ रात को जब दही जमाती तो भगवान का नाम लेते-लेते जमाती थी । बालक विनोबा ने एक दिन पूछा : “माँ ! दही जमाने में परमेश्वर को घसीटने की क्या जरूरत है ? उनका नाम न लें तो क्या दही नहीं जमेगा ?”

माँ ने कहा : “विन्या ! हम अपनी तरफ से भले ही पूरी तैयारी कर लें, पर दही तो ठीक से तभी जमेगा जब भगवान की कृपा होगी ।”

विनोबाजी कहते हैं : ‘जेल में मैं सब बातों का ध्यान रखकर दही जमाता था, फिर भी कभी-कभी खट्टा हो जाता था, तब मुझे माँ की यह बात याद आती थी ।’ कितनी ऊँची शिक्षा दी है भारत की इस माता ने अपने बालक को ! बचपन से ही वेदान्त के संस्कारों का सिंचन कि दही भले अपने-आप जमता हुआ दिखता है परंतु वह जिसकी सत्ता से जमता है, उसका स्मरण कर हमें उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए । हे भारत की माताओ ! आप भी अपने बच्चों में ऐसे दिव्य संस्कारों का सिंचन करो तो आगे चलकर वे स्वयं का, तुम्हारा और देश का नाम अवश्य रोशन करेंगे । उनके कर्मों में भक्तिरस आयेगा तो निर्वासनिक



नारायण के सुख में उनको प्रतिष्ठित कर देगा ।

तौल-नाप से कहीं पूजा होती है ?

विनोबा की माँ भगवान शिव की पूजा करती तो गिनकर एक लाख चावल के दाने शिवजी पर चढ़ाती ।

एक दिन विनोबा के पिताजी ने उन्हें कहा :

“यह क्या एक-एक दाना गिनने की खटपट लगा रखी है ? तौलकर देख लो कि एक तोले में कितने दाने चढ़ते हैं । उसी हिसाब से तौलकर चावल शिवजी पर चढ़ा दो । भूल-चूक के लिए थोड़े दाने ऊपर से डाल दो ।”

माँ ने विनोबा से पूछा : “क्यों विन्या ! ऐसा करना ठीक होगा क्या ?”

बालक विनोबा ने कहा : “माँ ! तू किस चक्कर में पड़ गयी ? तौल-नाप से कहीं पूजा होती है ? इसमें तो तेरा मन लगता है । तू देखती जाती है कि हर दाना अखण्ड तो है न । हर दाने के साथ शिवजी की स्मृति भी होती है । तौलकर दाने चढ़ाने में यह बात कहाँ !”

उपरोक्त प्रसंग में बालक विनोबा की उत्तम समझ का परिचय मिलता है । यह है माता के दिव्य संस्कार-सिंचन के फलस्वरूप बालक की उन्नत समझ का उदाहरण ।

## भूत बन गया गुलाम

विनोबाजी के ज्ञान-भक्तिमय सफल जीवन के पीछे उनकी भक्तिमती माँ के संस्कारों का अतुलनीय योगदान था । एक रात विनोबाजी दीवार पर एक काला भूत (बड़ी परछाई) देखकर बहुत डर गये । ऐसा लम्बा आदमी उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था । वे डर के माँ के पास भागे और सारी बात बतायी ।

माँ ने हँसते हुए बड़ी सहजता से कहा : “इसमें घबराने की क्या जरूरत है ! वह तो तेरा गुलाम है । तू जैसा करेगा, वह वैसा ही करेगा । बेटा ! किसी चीज से डरना नहीं चाहिए बल्कि पहले देखना चाहिए कि उसके मूल में कौन है ?” वास्तव में वह उन्हींकी परछाई थी ।

कितनी बुद्धिमती थीं विनोबाजी की माँ ! उन्हें पता था कि मूल खोजने से बच्चे में खोजी वृत्ति बनेगी और वह आगे चलकर निडर, साहसी, महान आत्मा बन जायेगा ।

माँ के विचारों से विनोबाजी में कुछ आत्मबल आया और उन्होंने सोचा कि ‘कुछ करके देखूँ तो पता चले क्या होता है ।’ वे बैठ गये तो वह भी बैठ गया ! उठे तो वह उठ खड़ा हुआ । वे जो भी करें, वह भी वही करे । वे खुश हो गये कि ‘अरे, सच में यह तो मेरा गुलाम है, इससे क्या डरना !’

एक बार और उन्हें भूत का डर लगा । तब भी उनकी माँ ने उनमें भगवदीय बल भरते हुए कहा : “परमेश्वर के भक्तों को भूत कभी नहीं सताता । भूत का डर लगे तो लालटेन ले जाओ और भगवन्नाम-जप करो । भूत-वूत जो होगा सब भाग जायेगा ।” माँ के ऐसे आत्मबल जगानेवाले संस्कारों से विनोबाजी के मन से डर हमेशा के लिए विदा हो गया ।

मनुष्य के विचार ही उसके बंधन और मुक्ति के कारण होते हैं । इसीलिए यदि बचपन से ही बच्चों में निर्भयता, साहस, ध्यान-भक्ति, आत्मबल के संस्कारों का पोषण किया जाय तो वे ही संस्कार उन्हें महान बनाने में सहायप्रद होते हैं । संत विनोबा भावे, वीर शिवाजी, साँई श्री लीलाशाहजी, पूज्य बापूजी आदि महापुरुषों के महकते जीवन इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।

□

# होनहार बिरवान के होत चिकने पात

आचार्य विनोबा भावे का बचपन का नाम विनायक था। बालक विनायक का स्वभाव चिंतनशील था। विद्यार्थीकाल में खेलकूद में उसने कभी रुचि नहीं दिखायी। उसके मन में राष्ट्र के स्वाधीनता-संग्राम में भाग लेने की उत्कट अभिलाषा थी। मराठी और संस्कृत की पुस्तकें पढ़ने का उसे बड़ा चाव था। जब कभी कोई उससे अंग्रेजी में बात करने लगता तो उसे तुरंत टोकते हुए वह पूछता : “क्या तुम्हारी माँ अंग्रेज है ?”

अपनी माँ के सान्निध्य में बालक विनायक ने महाराष्ट्र के अधिकांश संतों की शिक्षाओं का ज्ञान प्राप्त किया। उसे संतों के दस हजार दोहे व चौपाइयाँ याद थीं। अनेक भजन भी याद थे। वह प्रायः मौन रहता और जब बोलने की जरूरत पड़ती तो बोलता। किशोरावस्था में ही विनायक ने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का संकल्प कर लिया था। उसकी माँ ने अपने बेटे को सलाह दी कि वह अपने संकल्प पर सदैव डटा रहे। उन्हें अपने बेटे की बुद्धिमत्ता पर विश्वास था।

विनायक का परिधान बहुत ही सादा था। उसके बाल सदा ही अस्त-व्यस्त रहते। यदि कोई उसके बालों की ओर संकेत करता तो उससे कह देता : “क्या तुम नाई हो ?”

विनायक अच्छा वक्तव्य देना जानता था परंतु उसे कोई पद स्वीकार नहीं था। एक दिन किसी मित्र ने उसे कोई पद सौंपना चाहा तो वह हँसकर बोला : “मुझे कोई पद देना ऐसा होगा जैसे संत तुकारामजी को इम्पीरियल बैंक का गवर्नर बनाना।”

विनायक ने अनुभव किया कि प्रत्यक्ष जीवन

में लौकिक शिक्षा की उपयोगिता नगण्य ही है। वह अपने मित्रों से कहा करता था कि इस शिक्षा के माध्यम से तो छात्रों को ‘यू आर द मोस्ट ओबिडिएंट सर्वेंट’ (अर्थात् आप सबसे अधिक आज्ञापालक नौकर हैं) - ये संस्कार ही दिये एवं दृढ़ किये जा रहे हैं। यही कारण था कि एक दिन उसने कागजों का एक पुलिंदा लिया और माँ की ओर बढ़ाकर कहा : “इसे आग में झोंक दो।”

माँ ने चकित होकर पूछा : “यह क्या है ?”

“मेरे स्कूल-कॉलेज के प्रमाणपत्र आदि।”

“विन्या ! लोग तो इन प्रमाणपत्रों पर अपनी जान न्योछावर करते हैं !”

“नहीं, इनकी मुझे कभी जरूरत पड़ेगी ही नहीं।” अगले ही क्षण सारे कागज चूल्हे में थे।

वास्तव में विनायक प्रलोभनों के सारे साधनों को समाप्त कर देना चाहता था। उसे अब ब्रह्म के विषय में प्रबल जिज्ञासा होने लगी थी। उसमें ये सारे प्रमाणपत्र उसे विघ्नरूप लग रहे थे। अपने मित्रों से वह कहा करता था कि वह कॉलेज छोड़कर अब ब्रह्म की साधना में लगना चाहता है।

जब विनायक ने किशोरावस्था में ही भगवान की खोज में घर का त्याग करने का निर्णय लिया तो उनकी माँ ने बेटे की बुद्धि पर पूरा विश्वास प्रकट करते हुए पति से कहा : “मेरा बेटा संकल्प का धनी है। उसने परिवार को त्यागने का निर्णय लिया है तो निश्चय ही इसीमें हम सबकी भलाई होगी।” वही बालक विनायक बड़े होकर आत्मवेत्ता संत श्री विनोबा भावे के रूप में सुप्रसिद्ध हुए। □

# पिता का अपमान, टी.बी. का मेहमान

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जो माता-पिता और गुरु की अवज्ञा करता है, उसको किसी-न-किसी जन्म में उसका फल भोगना ही पड़ता है। संत कबीरजी कहते हैं :

**कबिरा वे नर अंध हैं,**

**हरि को कहते और गुरु को कहते और ।**

**हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर ॥**

जैसे गुरु का ठुकराया हुआ कहीं का नहीं रहता, ऐसे माता-पिता के अपराधी को भी चुकाना पड़ता है।

बंगाल के फरीदपुर जिले का जितेन्द्रनाथ दास वर्मन नामक एक युवक टी.बी. (राजयक्ष्मा) की बीमारी से इतना तो बुरी तरह घिर गया कि सारे इलाज व्यर्थ हो गये। कुलगुरु ने कहा कि “यह रोग इस जन्म का नहीं है, पूर्वजन्म के किसी पाप का फल है। तुम भगवान तारकेश्वर की पूजा करो, वे ही तुम्हारी कुछ मदद करेंगे।”

उस युवक ने अपने कुलगुरु के आदेशानुसार भगवान श्री तारकेश्वरजी के मंदिर में पूजा-प्रार्थना प्रारम्भ कर दी। कुछ ही दिनों के बाद तारकेश्वर भगवान उसके स्वप्न में आये और कहा : “तूने पिछले जन्म में अपने पिता की अवज्ञा की थी, उनका अपमान किया था, उसीका फल है कि तू टी.बी. रोग से पीड़ित है और कोई इलाज काम नहीं कर रहा है। अब इस समय तेरा वह पूर्वजन्म का बाप फरीदपुर जिले के बड़े डॉक्टर श्री सत्यरंजन घोष के नाम से प्रसिद्ध है। तुम यदि उनकी चरणरज को ताबीज में मढ़ाकर धारण कर सको और प्रतिदिन उनका चरणोदक ले सको तथा वे संतुष्ट होकर तुम्हें क्षमा कर दें तो तुम

ठीक हो सकते हो, इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है।”

युवक ने स्वप्न की सारी बात अपने कुलगुरु को बतायी। कुलगुरु ने कहा कि “यह तारकेश्वर भगवान की कृपा है कि तुझे नामसहित पता भी बता दिया।” वह युवक डॉक्टर साहब के पास गया। स्वप्न की बात बतायी और बोला : “आप पिछले जन्म के मेरे पिता हो। मैंने आपका अपमान किया था, आपकी अवज्ञा की थी जिसके कारण मुझे टी.बी. रोग हो गया है। अब आप मुझे सेवा का अवसर दो।”

पूर्वजन्म का पिता अभी डॉक्टर था। वह जानता था कि यह संक्रामक रोग है। उसने जल्दी हाँ नहीं भरी। बोला : “तू पिछले जन्म का बेटा होगा तो होगा लेकिन इस जन्म में मैं तुझे साथ में रखूँ और कहीं मुझे भी टी.बी. हो जाय तो ? तू अभी अपने घर जा। तुझे नीरोग करने के लिए मैं कैसे और क्या सहयोग दूँ, इसके लिए मैं मेरे गुरुदेव धनंजयदास ब्रज-विदेही से पत्र-व्यवहार करके मार्गदर्शन लूँगा फिर तुझे समाचार भेजूँगा।”

डॉक्टर सत्यरंजन घोष ने अपने गुरुदेव को सारा विवरण लिख भेजा। गुरुदेव ने कहा : “उसको घर में रखना तो खतरे से खाली नहीं, पड़ोस में कहीं मकान लेकर दो फिर भी उसके आने-जाने से गड़बड़ हो सकती है। उत्तम तरीका तो यह है कि उस युवक जितेन्द्रनाथ दास को अपना छायाचित्र दे दो और कह दो कि तुम अपने घर में ही रहकर इस फोटो को साक्षात् अपना पिता मानकर सेवा-पूजा करो और चरणामृत लिया करो। कभी मौका मिलेगा तो मैं तुम्हें अपनी चरण-धूलि दे दूँगा, चरणामृत भी दे दूँगा। हिम्मत करो, तुम ठीक हो जाओगे।”

उस डॉक्टर ने अपने गुरुदेव के बताये अनुसार



टी.बी. से पीड़ित उस युवक को पत्र लिखकर भेज दिया। पत्र में लिखे अनुसार उस युवक ने छायाचित्र मँगवाकर पूजा प्रारम्भ कर दी। ज्यों-ज्यों पूजा करता गया, त्यों-त्यों उसका रोग मिटता गया। समय पाकर पिछले जन्म का पिता, जो अभी डॉक्टर था, उसने अपना चरणोदक तथा चरणरज दे दी और बोला : “मैंने तुझे माफ कर दिया।” वह युवक उसी समय ठीक हो गया। डॉक्टर ने परीक्षण करके देखा तो पाया कि अब उसके फेफड़ों में कोई दोष नहीं है। वह एक दिन डॉक्टर साहब के पास रहा, पुनः उनका चरणोदक पीकर तथा चरणरज लेकर वापस चला गया। इसलिए कभी भी माता-पिता से ऐसा व्यवहार न करें कि उनको दुःखी होना पड़े। लेकिन जो भगवान के रास्ते जाते हैं उन्हें यह दोष नहीं लगता।

हमारे ऋषियों ने तो माता-पिता को देव कहकर पुकारा है : **मातृदेवो भव । पितृदेवो भव ।**

एक बात और, मेरे पिताजी अंतिम समय में अर्थात् संसार से विदा लेते समय मेरी माँ के आगे हाथ जोड़कर बोले : “कभी मैंने तुझको कुछ भला-बुरा कह दिया होगा, कभी हाथ भी उठ गया होगा, उसके लिए तू मुझे माफ कर देगी तो ठीक होगा, नहीं तो मुझे फिर भोगना पड़ेगा। किसी जन्म में आकर तेरी डाँट-फटकार और पिटाई मुझे सहन करनी पड़ेगी।”

मेरी माँ ने कहा : “अच्छा तो मुझसे भी तो कोई गलती हुई होगी, आप माफ कर दो।”

बोले : “हाँ-हाँ, मैंने माफ कर दिया।”

आप भी मरो तो जरा यह अकल लेकर मरना। अब मरते समय याद रहे-न रहे, अभी साल में एक बार आपस में एक-दूसरे से माफ करा लिया करो। पति-पत्नी, भाई-भाई, मित्र-मित्र लेखा चुकता करा लिया करो, जिससे दुबारा कर्मबंधन

में पड़कर आना न पड़े। **गहना कर्मणो गतिः ।** कर्म की गति बड़ी गहन है।

न धन साथ चलेगा, न सत्ता साथ चलेगी, न चालाकी साथ चलेगी; साथ चलेगा धर्म, साथ चलेगा सत्कर्म, साथ चलेगा तुम्हारा आत्मा-परमात्मा। उसकी प्रसन्नता पाने के लिए करोड़ काम छोड़कर सत्संग कर ले, गुरु की शरण ले ले। □